तैत्तिरीय ब्राह्मण में सृष्टि प्रक्रिया

मनोज कुमार अग्रहरि (शोध छात्र)
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद
मो0 : 9307818920

प्रायः विश्व का प्रत्येक धर्मग्रन्थ सृष्टि की सीमा निर्धारित करता है, जबकि सृष्टि निस्सीम है, तदनुरूप सृष्टि जिज्ञासा भी निस्सीम होगी। इस जिज्ञासा की अविच्छिन्नता एवं निस्सीम भावना बनी ही रहेगी।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सृष्टि की जिज्ञासा इस प्रकार उपलब्ध होती है– ''वह कौन सा वन है और कौन सा वृक्ष, जिससे विश्वकर्मा ने इस आकाश और पृथ्वी को बनाया?''[1]

इस जिज्ञासा का समाधान ब्राह्मण ग्रन्थों में ही हो जाता है, जहाँ कहा गया है कि ''वह वन और वह वृक्ष ब्रह्म ही है, जिससे विश्वकर्मा ने आकाश और पृथ्वी को बनाया।'' वह ब्रह्म विश्व का कारण मात्र हीं नहीं, किन्तु धारण भी है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण तो इतना तक कह देती है कि कौन जानता है और कौन उसका वर्णन कर सकता है कि यह सृष्टि कहाँ से आई? क्योंकि देवता लोग भी तो सृष्टि के बाद ही जन्म लिए, इसलिए यह जानना असम्भव है कि यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई?[3] तैत्तिरीय ब्राह्मण भाश्य में इसका अर्थ करते हुए आचार्य सायण कहते हैं कि प्रत्यक्ष और अनुमान से सृष्टि के कारण का ज्ञान नहीं हो सकता।

''——————————————न तावत्प्रत्यक्षेण पष्यन्ति, तदानीं स्वयमेवाभावात् नाप्यनुमातुं शक्ताः तद्योग्ययोर्हेतुदृष्टान्तयोरभावात्।''

उपर्युक्त ग्रन्थों में जहाँ संदेह किया गया है, वहीं उसका निराकरण भी उपलब्ध होता है कि परमव्योम में निवास करने वाला परमात्मा ही सृष्टि के कारण तथा स्वरूप को जान सकता है, किन्तु इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार सृष्टि के रहस्य को देव और मनुष्य तो समझ ही नहीं सकते, क्योंकि वे स्वयं ही सृष्टि के अनन्तर आते हैं।[4] ऋग्वेद में कहा गया है कि सृष्टि प्रक्रिया में सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ थे, जिसने पृथिवी को आधार देकर सुदृढ़ किया।[5] एक का अनेक भाव में आना और अनेक का एक सूत्र में ग्रथित होना ही विश्व सृष्टि का मूल सिद्धान्त है। वैसे तो वैदिक वाङ्मय में सृष्टि के दो सिद्धान्तों का उल्लेख पाया जाता है। प्रथम सिद्धान्त विश्व को यान्त्रिक सृजन का विकास (बढ़ई द्वारा सृजन का विकास) मानता है और द्वितीय प्राकृतिक उद्भव का परिणाम मानता है।[6] यह तो निश्चित ही है कि जिन्होंने विश्व सृजन किया, वे या तो सामान्यतः समस्त देवगण थे अथवा भिन्न–भिन्न देव लोग ही; किन्तु जहाँ निर्माण स्थल पर किसी प्रकार के विशेषज्ञ की आवश्यकता हुई है, वहाँ काष्ठ, तक्षक अथवा ऋभुओं के कार्यकुशल हाथों का उल्लेख है, जब कि विष्णु ने मनुष्यों के आवास हेतु ही तीनों लोकों में डग भरा था।[7]

ऋग्वेद के पुरूष–सूक्त के अनुसार विराट् पुरूष को ही विश्वोत्पत्ति का एक मात्र प्रतिनिधि माना गया

है। उपनिषदों में परम तत्व ब्रहम की माया को सृष्टि प्रक्रिया में आदि जननी के रूप में उपन्यस्त किया गया है। इस औपनिशदिक धारा के अुनसार समस्त ब्रह्माण्ड माया का विराट् एवं विकसित रूप है। सांख्य दर्शन के अनुसार समस्त ब्राह्मण पुरूष और प्रकृति के संयोग से उत्पन्न हुआ है। पुरूष और प्रकृति में पूर्णतया आत्मसंविलयन के कारण यह सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक विश्व विरचित हुआ है।[8]

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में मात्र असत् की सत्ता थी। इसी असत् के अनन्तर सत् की की उत्पत्ति हुई। इस कथन से विद्धानों में वैमत्य रहा है। उनका अभिमत हैं कि असत् तो निशेधात्मक शून्य की स्थिति है, जिससे किसी भी सत्ता का जन्म संभव नहीं है, इसलिए भारतीय परम्परा में सत् से ही समस्त सृष्टि की कल्पना की गयी है असत् से तो कोई सत्ता उत्पन्न ही नहीं हो सकती, क्योंकि असत् वस्तु एवं सत्ता का निषेध करता है। यदि ध्यान से देखा जाय तो इस वाक्य में कोई विसंगति प्रतीत नहीं होती। असत् से सत् की उत्पत्ति का अर्थ यहां अभीष्ट ही नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थकार के कथन का तात्पर्य केवल इतना ही हैं कि सृष्टि के आरम्भ में कुछ भी विद्यमान नहीं था। यही कारण है कि जो भी रचना सर्वप्रथम हुई, वह सत् स्वरूप ही हुई। अतएव असत् से सत् के उत्पन्न होने का यहाँ कथन ही अभीष्ट नहीं है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में एक मात्र ब्रह्म ही था। एक बार सृष्टि करने की इच्छा से अभिप्रेरित होकर ब्रह्मा ने तूष्णी मन से ध्यान किया। ब्रह्मा का यह तूष्णी मन ही प्रजापति का रूप था ''स तूष्णी मनसा ध्यायेत्। तस्य यन्मनासीत् स प्रजापतिरभवत्।[9]'' ब्राह्मण में इसे इस प्रकार कहा गया है कि असत् मन से प्रजापति का सृजन हुआ,[10] अर्थात् उस तूष्णी मनस् तत्त्व से प्रजापति उत्पन्न हुआ, जो असत् स्थिति में भी विद्यमान था। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसका तात्पर्य कदापि यह नही मानना चाहिए कि असत् से प्रजापति उत्पन्न हुए। असत् सृष्टि की उस पूर्वावस्था मात्र को घोषित करता है, जिसमें कुछ भी सत्ता विघमान ही नही थी। उस स्थिति में भी ब्रह्मा का तूष्णी मनस् विद्यमान था, यद्यपि उसका कोई विकार–युक्त प्रस्फुटित अथवा व्यक्त रूप नहीं था। ब्रह्मा का तूष्णी मन ही प्रजापति रूप इस समस्त सृष्टि का जनक है। प्रायेण सभी ब्राह्मण ग्रन्थों मे इस भाव की पुष्टि होती है। [11] क्योंकि सभी ब्राह्मण ग्रन्थों में बारम्बार यही कहा गया है कि प्रजापति ने अपने को अनेक रूपों में सृजित करने की इच्छा व्यक्त की अथवा सृजन की कामना की, अतः यह इच्छा रूप मनःकल्प ही ब्रह्म के मनस् तत्व को सृष्टिकर्ता के रूप में इंगित करता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सृष्टि प्रक्रिया के बारे में उल्लेख मिलता है कि इस ब्रह्माण्ड के पूर्व कुछ भी नहीं था, न तो आकाश था, न पृथ्वी थी, न वायु। सृष्टि रचना का मानसिक विचार सर्वप्रथम 'असत् से ही उपजा था। ब्रह्म रूप प्रजापति की इस इच्छा के उगते ही कि 'प्रस्फुटित हो जाऊँ' उनका तप आरम्भ हो गया। इस तप से धूम उत्पन्न हुआ। धूम भी तत्प हुआ, जिससे अग्नि उत्पन्न हुई। फिर यह भी तप्त हुआ, जिससे ज्योति (प्रकाश–पुंज) उत्पन्न हुआ। फिर यह भी तप्त हुआ, जिससे ज्वाला उत्पन्न हुई। फिर यह भी तत्प हुआ, जिससे किरणें उत्पन्न हुई। फिर यह भी तत्प हुआ, जिससे उदारों (कूहरा) की उत्पत्ति हुई। वह पुनः तप्त हुआ और

मेघों के समान ठोस हो गया। इन मेघों से वस्ति (पृथुलकाय जलीय गुब्बारे) फूटने लगे, जो समुद्र में परिवर्तित हो गया।[12] आशय यह है कि घनीभूत मेघ परमात्मा का बस्ति स्थान था, जिसे मूत्राशय कहा गया है– ''मूत्राशयो धनुर्वको बस्तिरित्यभिधीयते''।[13] जिसके फलस्वरूप स्रष्टा के वस्ति (मूत्राशय) के भेदन से समुद्र उत्पन्न हुआ, इसी कारण समुद्र का जल आज भी पीने योग्य नहीं है। तदनन्तर सब कुछ जलमग्न हो गया। इसके बाद दशहोतृ (एक प्रकार का मन्त्र) की सृष्टि हुई। यह दशहोतृ ही प्रजापति था– ''तदृशहोताऽन्वसृज्यत्। प्रजापतिर्वै दशहोता, इति।''[14] अपने चारों ओर सब कुल जलमग्न देखकर प्रजापति को रूलाई आ गई और वह बोला कि जब मैं कुछ भी नहीं कर सकता, कुछ भी नहीं रच सकता, तो मेरी उत्पत्ति ही क्यों हुई? प्रजापति के इसी अश्रुजल से जो कुछ समुद्र में गिरा, वह पृथिवी बन गया, जो कुछ उसने पोंछा, वह अन्तरिक्ष बन गया और जो कुछ उसने ऊपर फेंक दिया, वह द्युलोक बन गया। चूँकि प्रजापति के रोने से पृथिवी लोक और द्युलोक की रचना हुई है; इसलिए इन दोनो को 'रोदसी' भी कहते हैं। जो व्यक्ति इस रहस्य को जानते हैं, उनके घर में कोई रोता नहीं है। इस प्रकार तीनों लोकों को उत्पत्ति हुई, जो इस रहस्य को जानते है, वे तीनों लोकों में कोई कष्ट नहीं प्राप्त करते हैं।[15] तदनन्तर प्रजापति ने इस पृथिवी को आधार के रूप में पाया। इस पृथिवी को आधार के रूप में प्राप्त कर उसने इच्छा कि, 'मैं सन्तान उत्पन्न करूँ''। ऐसी इच्छा होते ही उसका उग्र तप प्रारम्भ हो गया, जिससे उसने गर्भ धारण किया, जिसके फलस्वरूप उसके जघन भाग से असुरों की उत्पत्ति हुई।[16] उसके लिए प्रजापति ने मिट्टी के पात्र में दूध निकाला। तत्पश्चात् असुर अपना शरीर त्यागकर अंधकारमय (रात्रि) हो गये। उसने पुनः इच्छा की, ''मैं सन्तान उत्पन्न करूँ''। उसने कठोर तप किया। उसने गर्भ धारण किया, जिसके द्वारा उसने अपने प्रजननेद्रिय से जीवित प्राणियों (प्रजाः) की सृष्टि की। उनके लिए प्रजापति ने एक काष्ठ–पात्र में दूध निकाला। इसके पश्चात् उसने अपना शरीर त्यागकर चन्द्रिका बन गया।[17] प्रजापति ने पुनः इच्छा की, ''मैं सन्तान उत्पन्न करूँ, उसने कठोर तप किया। उसने गर्भ धारण किया, जिसके द्वारा उसने अपने बाहु–कक्ष से ऋतुओं को उत्पन्न किया। उसने ऋतुओं के लिए रजत के पात्र में घृत निकाला। तत्पश्चात् वह अपना शरीर त्यागकर रात और दिन का सन्धि–काल हो गया।[18] इसके बाद प्रजापति पुनः सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से अपने मुख से देवताओं को उत्पन्न किया। उसने उनके लिए सोने के पात्र में दूध निकाला। तत्पश्चात् वह अपना शरीर त्यागकर दिन हो गया।[19] यह प्रक्रिया प्रजापति का दोहन है। जो इसे जानता है, वह सन्तान का दोहन करता है–

''एते वै प्रजापतेर्दोहाः। य एवं वेद। दुह एव प्रजाः, इति।''[20]

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार, 'दिवा हमारे निकट आई है, यह उक्ति देवताओं के देवतत्व का द्योतक है, जो व्यक्ति इस तथ्य को जानता है, वह देवताओं को प्राप्त करता है।[21] यही दिवा दिन और रात्रि की उत्पत्ति का कारण है, जो इस रहस्य को जानता है, वह दिन और रात में कोई कष्ट नहीं पाता।[22]

तदनन्तर असत् से मन (आत्मा, मनस्) उत्पन्न हुआ और मन से प्रजापति की सृष्टि हुई व प्रजापति ने सन्तानों (प्रजाओं) की सृष्टि की। इस सृष्टि में जो कुछ भी है वह सभी मन पर ही आधारित है। इसलिए ही सङ्कल्पित अर्थ वाला यह मन श्वोवस्यस्' नामक ब्रह्म है।[23]

तत्पश्चात सृष्टि की सुरक्षा हेतु 'ऋत' की कल्पना की गयी। वास्तव में सृष्टि की सुरक्षा प्राकृतिक नियमों की संरक्षा पर निर्भर है। इन्हें ही 'ऋत' कहा गया है, जिसका अतिक्रमण कोई भी वस्तु नहीं कर सकती है। भूमि और समुद्र सभी उसी पर अवलम्बित है– 'ऋतमेव परमेष्ठि। ऋतं नात्येति किंचन। ऋते समुद्र आहितः। ऋते भूमिरियं श्रिता'।[24] इस प्रकार सृष्टि के नियमन संचालन हेतु यह 'ऋत' ही अन्ततोगत्वा उत्तरदायी है।

[1] किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा–पृथ्वी निष्टतक्षुः। तै0ब्रा0 2.8.9.6

[2] ब्रह्मा वनं स वृक्ष आय यतो द्यावा–पृथ्वी निष्टतक्षुः। तै0ब्रा0 2.8.9.6

[3] को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः। तै0ब्रा0 2.8.9–5; 2.8.9.6

[4] इयं विसृष्टिर्यत् आभूव ---------ऋ0सं0 10.129.7

[5] हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। ऋ0सं0 10.121.1

[6] वै0मा0 अनृ0 रामकुमार राय, पृष्ठ 19

[7] ऋ0सं0 6.69

[8] The whole world even according to it due the self direction of the absolute into subject and object, Purus and Prakriti. India Philosophy Vol. 1 by Dr. Radha Krishna.

[9] साम विधान ब्राह्मण 1.1

[10] असतोऽधिमनोऽसृज्यत मनः प्रजापतिमसृजत। तै0 ब्रा0 2.2.9.10

[11] श0ब्रा0 6.1.3.1, प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। ऐ0ब्रा0 10.1

[12] इदं वा अग्रे नैव --------- तद्वस्तिमभिनत्। तै0ब्रा0 2.2.9.1–2

[13] तै0ब्रा0 2.2.9.2 [14] तै0ब्रा0 2.2.9.3

[15] तद्वा इदमापः सलिलमासीत्----------स इमांप्रतिष्ठाम् वित्वाऽकामयत प्रजायेयेति। तै0ब्रा0 2.2.9.2–5

[16] तै0ब्रा0 2.2.9.5 [17] तै0ब्रा0 2.2.9.6–7

[18] तै0ब्रा0 2.2.9.7–8 [19] तै0ब्रा0 2.2.9.8

[20] तै0ब्रा0 2.2.9.9 [21] तै0ब्रा0 2.2.9.9 [22] वही

[23] असतोऽधि मनोऽसष्ज्यत ---------- नाम ब्रह्म इति''।

[24]तै0ब्रा0 2.2.9.10

मनोज कुमार अग्रहरि (शोध छात्र)
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद
मो0 : 9307818920